राजस्थान **उच्च** न्यायालय

जयपुर बेंच

एस.बी. क्रिमिनल मिसलेनियस (याचिका) संख्या **2146/2011**

धर्मवीर सिंह पुत्र श्री भवानी सिंह निवासी डी-3, द्वारकापुरी, आर.पी.ए. रोड, जयपुर

----याचिकाकर्ता

बनाम

1. राजस्थान राज्य

2. अंडा पुत्र किशन सिंह निवासी कानपुरा सुरेल का बड़िया, पुलिस थाना मासूदा, जिला अजमेर

----उत्तरदाता

याचिकाकर्ता(ओं) के लिए	:	श्री ए.के. गुप्ता वरिष्ठ अधिवक्ता, श्री सौरभ प्रताप सिंह, श्री गौरव द्वारा सहायता प्राप्त
उत्तरदाता(ओं) के लिए	:	श्री एस.एस. महला, पीपी

माननीय श्री जस्टिस सुदेश बंसल

निर्णय

आरक्षित **22 अप्रैल 2024**

घोषित **08 मई 2024**

रिपोर्टेबल

1. वर्तमान याचिका धारा 482 दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत दायर की गई है, जिसमें विचारणीय मुद्दा यह है कि धारा 323 एवं 504 भारतीय दंड संहिता के अंतर्गत अपराधों

(30/05/2025 को 12:13:56 बजे डाउनलोड किया गया)

के लिए याचिकाकर्ता, जो कि एक लोक सेवक है तथा पुलिस थाना मासूदा, जिला अजमेर में थाना प्रभारी (एसएचओ) के पद पर पदस्थापित था, के विरुद्ध न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा संज्ञान लिया जाना, क्या पूर्व स्वीकृति के अभाव में कानून की दृष्टि में टिकाऊ है, जबकि धारा 197 दंड प्रक्रिया संहिता के अनुसार अभियोजन पूर्व स्वीकृति एक वैधानिक आवश्यकता है, जब किसी लोक सेवक के विरुद्ध आपराधिक अभियोजन प्रारंभ किया जाता है?

2. याचिकाकर्ता ने निम्नलिखित राहत की प्रार्थना की है:-

> *"अतः, विनम्रतापूर्वक प्रार्थना की जाती है कि आपके प्रभु कृपया इस विविधा याचिका को स्वीकार करने की कृपा करें तथा दिनांक 31.05.2011 के आदेश (अनुलग्नक-4) को निरस्त करने की कृपा करें, जो"*
> *विद्वान अतिरिक्त जिला एवं सत्र न्यायाधीश, बोवर, जिला अजमेर द्वारा पुनरीक्षण संख्या 24/2009 को खारिज करने तथा दिनांक 30/1/2009 के आदेश (अनुलग्नक-3) को निरस्त करने के संबंध में पारित किया गया है, जो विद्वान अतिरिक्त सिविल न्यायाधीश (जूनियर डिवीजन) एवं न्यायिक मजिस्ट्रेट प्रथम श्रेणी, संख्या 2, बोवर, जिला अजमेर (राज.) द्वारा शिकायत संख्या 7/2009 में धारा 323 एवं 504 भारतीय दंड संहिता के तहत याचिकाकर्ता के विरुद्ध संज्ञान लेने के संबंध में पारित किया गया था, और शिकायतकर्ता द्वारा दायर शिकायत (अनुलग्नक-1) तथा याचिकाकर्ता के विरुद्ध सभी बाद की कार्यवाहियाँ भी कृपया निरस्त एवं रद्द की जाएं।"*

3. अभिलेख से संकलित मामले के मुख्य तथ्य, संक्षेप में, निम्नलिखित हैं:-

3.1 याचिकाकर्ता के थाना मासूदा, जिला अजमेर में एसएचओ के रूप में नियुक्ति के दौरान, प्रतिवादी संख्या 2-शिकायतकर्ता द्वारा 27.05.2003 को उसके विरुद्ध एक

(30/05/2025 को 12:13:56 बजे डाउनलोड किया गया)

आपराधिक शिकायत दायर की गई थी, जिसमें याचिकाकर्ता के विरुद्ध धारा 323, 342, 365 और 504 भारतीय दंड संहिता के अंतर्गत अभियोजन चलाने की मांग की गई थी। इसमें उल्लेख किया गया था कि तीन व्यक्तियों - अंडा (शिकायतकर्ता-प्रतिवादी संख्या 2), मोहन सिंह एवं नरेंद्र सिंह - को पुलिस ने 22.05.2003 को रात लगभग 8 बजे गिरफ्तार किया और थाना मासूदा में बंद कर दिया। इसके बाद अगले दिन यानी 23.05.2003 को, इन सभी तीन व्यक्तियों सहित शिकायतकर्ता-प्रतिवादी संख्या 2 को उपखंड मजिस्ट्रेट (एसडीएम) के समक्ष प्रस्तुत किया गया और एसडीएम द्वारा निर्देशित जमानत के आधार पर उन्हें पुलिस अभिरक्षा से रिहा कर दिया गया।

3.2 आपराधिक शिकायत में यह आरोप लगाया गया है कि याचिकाकर्ता ने बिना किसी न्यायोचित कारण के और केवल अपने अधिकारों के दुरुपयोग के चलते तीनों व्यक्तियों को एक दिन के लिए पुलिस थाना में अवैध रूप से बंद रखा, तथा 22.05.2003 की रात को शिकायतकर्ता अंडा और मोहन सिंह के साथ याचिकाकर्ता द्वारा बुरी तरह बर्ताव किया गया। याचिकाकर्ता द्वारा अपने एसएचओ के पद का दुरुपयोग करते हुए, शिकायतकर्ता-अंडा और मोहन सिंह के साथ दुर्व्यवहार, गाली-गलौज और रबर बेल्ट से मारपीट की गई। आरोप किया गया कि शिकायतकर्ता-अंडा एवं मोहन सिंह को उनके शरीर के विभिन्न हिस्सों पर कई शारीरिक चोटें आईं, किंतु उनका चिकित्सीय परीक्षण किए बिना ही उन्हें अगले दिन यानी 23.05.2003 को एसडीएम न्यायालय में प्रस्तुत कर दिया गया। आगे आरोप लगाया गया कि अभिरक्षा से रिहा होने के बाद 24.05.2003 को पुलिस अधीक्षक, ब्यावर, जिला अजमेर को एक लिखित शिकायत दी गई, जिसमें याचिकाकर्ता द्वारा शिकायतकर्ता-अंडा एवं मोहन सिंह के साथ मनमानी व

(30/05/2025 को 12:13:56 बजे डाउनलोड किया गया)

अवैध कार्यवाही करने की शिकायत की गई, किन्तु इस शिकायत पर कोई कार्यवाही नहीं हुई।

3.3 आगे कहा गया है कि दिनांक 24.05.2003 को एसडीएम के समक्ष एक आवेदन प्रस्तुत किया गया, जिसमें शिकायतकर्ता-अंडा एवं मोहन सिंह का चिकित्सीय परीक्षण कराने की प्रार्थना की गई, जिस पर उनके अनुरोध पर, चिकित्सीय परीक्षण सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्र, मासूदा में 24.05.2003 को लगभग 4 बजे शाम को कराया गया।

3.4 उल्लेखनीय है कि इसके बाद, प्रतिवादी संख्या 2-अंडा द्वारा याचिकाकर्ता के विरुद्ध 27.05.2003 को अतिरिक्त न्यायिक मजिस्ट्रेट संख्या 2, ब्यावर की अदालत में वर्तमान आपराधिक शिकायत दर्ज की गई थी, जिसमें याचिकाकर्ता के विरुद्ध धारा 323, 342, 365 और 504 भारतीय दंड संहिता के कथित अपराधों के लिए अभियोजित करने की मांग की गई थी। यह ध्यान देने योग्य है कि अन्य व्यक्ति मोहन सिंह ने कोई शिकायत दर्ज नहीं कराई।

3.5 प्रतिवादी संख्या 2-अंडा की आपराधिक शिकायत प्राप्त होने पर, न्यायिक मजिस्ट्रेट ने शिकायतकर्ता के धारा 200 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत बयान तथा गवाह नरेंद्र सिंह, मोहन सिंह एवं अन्ना के धारा 202 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत बयान दर्ज किए और तत्पश्चात आदेश दिनांक 07.03.2006 के माध्यम से शिकायत को आगे की जाँच के लिए पुलिस को भेजा गया।

(30/05/2025 को 12:13:56 बजे डाउनलोड किया गया)

3.6 पुलिस द्वारा विस्तारपूर्वक जांच के बाद, न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष 15.01.2007 को नकारात्मक अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की गई।

3.7 पुलिस द्वारा प्रतिवादी संख्या 2-शिकायतकर्ता द्वारा दायर आपराधिक शिकायत की जांच के उपरांत, अभिलेख के अनुसार वास्तविक तथ्य उजागर हुए और सच्ची स्थिति सामने आई कि वास्तव में शिकायतकर्ता व अन्य दो व्यक्ति, अर्थात् मोहन सिंह एवं नरेंद्र सिंह, को पुलिस ने 22.05.2003 की रात को धारा 151 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत इसलिए गिरफ्तार किया, ताकि उनके द्वारा कोई संज्ञेय अपराध कारित होने से रोका जा सके, क्योंकि वे शांति भंग कर रहे थे और भनवर सिंह के परिवार पर तथा घटनास्थल पर पहुँचने वाली पुलिस पार्टी (सुरेल का बड़िया, मानपुरा, अजमेर पर हमला करने का प्रयास कर रहे थे, जो कानून व्यवस्था की स्थिति को नियंत्रित करने हेतु मौके पर पहुंची थी। इस प्रकार, अभिलेख अनुसार यह सही परिस्थिति प्रकट हुई कि वास्तव में तीनों व्यक्तियों, जिसमें प्रतिवादी संख्या 2-शिकायतकर्ता भी शामिल था, को पुलिस ने धारा 151 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए, रोजनामचा में रिपोर्ट तैयार कर गिरफ्तार किया था। इसके अलावा, यह भी स्पष्ट हुआ कि धारा 107/116(3) सहपठित धारा 151 दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत पुलिस द्वारा एसडीएम न्यायालय में अगले दिन, अर्थात 23.05.2003 को, सभी तीनों अभियुक्तों (जिसमें प्रतिवादी संख्या 2-शिकायतकर्ता भी शामिल है के विरुद्ध शिकायत दर्ज की गई थी, जब उन्हें एसडीएम के समक्ष प्रस्तुत किया गया। इस शिकायत में, उनकी गिरफ्तारी का पूरा कारण तथा उनके द्वारा शांति भंग या संज्ञेय अपराध की आशंका संबंधी सभी तथ्य विस्तार से उल्लिखित किए गए।

(30/05/2025 को 12:13:56 बजे डाउनलोड किया गया)

यह शिकायत एसडीएम न्यायालय के अभिलेख में पंजीबद्ध की गई। फौजदारी मामला संख्या 95/2003: राज्य बनाम नरेंद्र सिंह एवं अन्य, तथा धारा 111 और 112 दंड प्रक्रिया संहिता की अनुपालना करने के बाद, आरोप और आदेश अभियुक्तों के समक्ष पढ़े जाने पर, तीनों ने अपना दोष स्वीकार कर लिया और शांति व सुव्यवस्था बनाए रखने हेतु छह महीने की अवधि के लिए जमानती बांड भरने के लिए सहमत हुए। तदनुसार, एस.डी.एम. ने दिनांक 23.05.2003 का आदेश पारित किया, जिसमें तीनों अभियुक्तों, जिसमें शिकायतकर्ता-प्रतिवादी संख्या 2 भी शामिल है, को छह महीने तक शांति एवं सुव्यवस्था बनाए रखने के लिए जमानती बांड भरने पर रिहा करने की अनुमति दी गई। इस प्रकार, यह आपराधिक मामला एस.डी.एम. की फाइल पर निस्तारित कर दिया गया।

3.8 यह उल्लेखनीय है कि जांच रिपोर्ट में यह पाया गया कि शिकायतकर्ता-प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा अपनी आपराधिक शिकायत में लगाए गए ये आरोप कि उन्हें प्रतिवादी द्वारा प्रतिद्वंद्विता एवं एक भनवारा पुत्र रूपा के प्रभाव में थाना में गाली दी गई, दुर्व्यवहार किया गया तथा पीटा गया, पूरी तरह से असत्य हैं। जांच रिपोर्ट में यह भी देखा गया कि शिकायतकर्ता एवं अन्य अभियुक्त व्यक्तियों ने न तो कोई शिकायत की और न ही अपना चिकित्सीय परीक्षण कराने को कहा, जब उन्हें 23.05.2003 को एसडीएम के समक्ष प्रस्तुत किया गया था, और शिकायतकर्ता एवं गवाहों के बयान के अनुसार, आपराधिक शिकायत में प्रतिवादी के विरुद्ध लगाए गए आरोप बाद की कल्पना/काल्पनिक निकले और केवल प्रतिवादी को परेशान करने तथा उनकी छवि और स्थिति को धूमिल करने के लिए बनाए गए थे। रिपोर्ट में यह भी अंकित किया गया कि

(30/05/2025 को 12:13:56 बजे डाउनलोड किया गया)

अभियुक्त व्यक्तियों सहित शिकायतकर्ता-प्रतिवादी संख्या 2 को 22.05.2003 को गिरफ्तार किया गया था और अगले दिन 23.05.2003 को एसडीएम के समक्ष पेश किया गया, तथा साथ ही साथ धारा 107/116(3) सहपठित 151 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत अपराधों के लिए आपराधिक शिकायत थी। एसएचओ द्वारा उनके विरुद्ध प्रस्तुत की गई शिकायत में, और ऐसे सभी कार्य याचिकाकर्ता द्वारा, एसएचओ के रूप में अपनी आधिकारिक जिम्मेदारियों का निर्वहन करते हुए किए गए थे, अतः याचिकाकर्ता के विरुद्ध आपराधिक शिकायत में आरोपित कोई अपराध सिद्ध नहीं होता।

3.9 जांच रिपोर्ट प्राप्त करने के बाद, न्यायिक मजिस्ट्रेट ने शिकायतकर्ता की आपराधिक शिकायत पर उसकी बात सुनी और दिनांक 30.01.2009 को आदेश पारित किया, जिसमें धारा 323 एवं 504 भारतीय दंड संहिता के अधीन अपराधों का संज्ञान लेते हुए याचिकाकर्ता के विरुद्ध अभियोजन की प्रक्रिया जारी करने का आदेश दिया।

यह आदेश दिनांक 30.01.2009 के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि मजिस्ट्रेट ने धारा 365 और 342 आईपीसी के अधीन अपराधों के लिए संज्ञान लेने से इंकार कर दिया, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि शिकायतकर्ता और अन्य दो आरोपी व्यक्तियों को 22.05.2003 की रात पुलिस स्टेशन मसोड़ा में हिरासत में लिया जाना अवैध नहीं था। मजिस्ट्रेट ने स्वीकार किया कि शिकायतकर्ता को हिरासत में लेने के लिए वैध कारण थे ताकि शांति भंग या अपराध घटित होने से रोका जा सके और ये कार्य शिकायतकर्ता के आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन में किए गए थे। फिर भी, धारा 323 और 504 आईपीसी के अधीन अपराधों के लिए याचिकाकर्ता के खिलाफ संज्ञान लिया

(30/05/2025 को 12:13:56 बजे डाउनलोड किया गया)

गया, यह मानते हुए कि चोटें, खरोंच और घाव, जो शिकायतकर्ता-प्रतिवादी नं.2-अंडा और मोहन सिंह के शरीर पर पाए गए, जैसा कि उनकी चोट रिपोर्ट दिनांक 24.05.2003 में दर्शाया गया है, कथित रूप से याचिकाकर्ता द्वारा की गई मारपीट के कारण हुईं और केवल इसी कार्य को याचिकाकर्ता के आधिकारिक कर्तव्य का हिस्सा नहीं माना गया। तदनुसार, धारा 197 सीआरपीसी के तहत मंजूरी प्राप्त किए बिना ही संज्ञान लिया गया। और संज्ञान लेने के पश्चात, याचिकाकर्ता के विरुद्ध कार्यवाही आरंभ करने का आदेश दिया गया।

3.10 दिनांक 30.01.2009 के संज्ञान का आदेश याचिकाकर्ता द्वारा विभिन्न आधारों पर, जिनमें से एक यह था कि संज्ञान धारा 197 सीआरपीसी के अंतर्गत आवश्यक स्वीकृति के बिना लिया गया, अतः यह कानून सम्मत नहीं है—आदि बिंदुओं के आधार पर आपराधिक पुनरीक्षण याचिका द्वारा चुनौती दी गई। यह पुनरीक्षण याचिका अतिरिक्त जिला एवं सत्र न्यायाधीश, ब्यावर द्वारा आदेश दिनांक 31.05.2011 के माध्यम से खारिज कर दी गई।

3.11 उपर्युक्त तथ्यात्मक स्थिति की पृष्ठभूमि में, याचिकाकर्ता ने धारा 482 सीआरपीसी के अंतर्गत उच्च न्यायालय की अधिकारिता का आह्वान करते हुए यह याचिका दायर की है, जिसमें संज्ञान आदेश की वैधता एवं धारा 323 और 504 आईपीसी के अंतर्गत आपराधिक अभियोजन को चुनौती दी गई है, और साथ ही साथ धारा 197 सीआरपीसी के अंतर्गत लोक सेवकों को प्रदत्त संरक्षण का सहारा लिया गया है।

(30/05/2025 को 12:13:56 बजे डाउनलोड किया गया)

याचिका को सुनवाई हेतु स्वीकार कर लिया गया है और आदेश दिनांक 19.08.2011 द्वारा, चुनौतीपूर्ण संज्ञान आदेश के अनुसार याचिकाकर्ता के विरुद्ध आपराधिक अभियोजन पर स्थगनादेश दे दिया गया है।

4. याचिकाकर्ता की ओर से प्रस्तुत हुए वरिष्ठ अधिवक्ता की दलील यह है कि यदि वर्तमान मामले के सभी तथ्यों को उनके मूल रूप में भी स्वीकार कर लिया जाए, तब भी याचिकाकर्ता द्वारा आरोपित कृत्य उसके पुलिस थाना मसूदा में एसएचओ के रूप में अपने आधिकारिक कर्तव्य का निर्वहन करते हुए किए गए थे। अतः याचिकाकर्ता के विरुद्ध बिना संबंधित राज्य सरकार की पूर्व स्वीकृति के लिया गया संज्ञान आदेश प्रथम दृष्टया अवैध है और धारा 197 सीआरपीसी के प्रावधान का स्पष्ट उल्लंघन है। वरिष्ठ अधिवक्ता ने यह तर्क दिया कि शिकायतकर्ता-प्रतिवादी संख्या 2 ने पुलिस द्वारा की गई शिकायत में लगाए गए आरोपों का विरोध नहीं किया, जो कि धारा 107/116(3) पठित धारा 151 सीआरपीसी के तहत शिकायतकर्ता व अन्य दो व्यक्तियों के विरुद्ध दर्ज की गई थी, जिसके तहत उन्हें पुलिस थाना में एक दिन के लिए हिरासत में रखा गया था। बल्कि, शिकायतकर्ता व अन्य दो व्यक्तियों ने ऐसे आरोप स्वीकार कर लिए तथा शांति और व्यवस्था बनाए रखने हेतु जमानत बांड प्रस्तुत करने और आदेशपालन हेतु सहमति दे दी, जैसा कि सम्मानीय एसडीएम द्वारा पारित आदेश में निर्देशित किया गया था। वरिष्ठ अधिवक्ता ने तर्क दिया कि शिकायतकर्ता ने न तो अपने विरुद्ध धारा 107/116(3) पठित धारा 151 सीआरपीसी के तहत दर्ज शिकायत का विरोध किया, न ही एसडीएम के आदेश को चुनौती दी। ऐसी परिस्थिति में, पुलिस की संपूर्ण कार्रवाई, जिसमें बिचौलियों को

(30/05/2025 को 12:13:56 बजे डाउनलोड किया गया)

हिरासत में लेना और एसडीएम के समक्ष प्रस्तुत करना शामिल है, पुलिस द्वारा अपने विधिक कर्तव्य का निर्वहन करते हुए समाज में विधि और व्यवस्था बनाए रखने के उद्देश्य से की गई कार्रवाई है। अतः मात्र मारपीट या गाली-गलौज को पूरी घटना की श्रृंखला से अलग करके याचिकाकर्ता का अभियोजन नहीं किया जा सकता, क्योंकि यह शृंखला का अभिन्न भाग है। वरिष्ठ अधिवक्ता ने कहा कि शिकायतकर्ता-प्रतिवादी संख्या 2 व अन्य दो के विरुद्ध की गई जांच, जो 22.05.2003 की रात संज्ञेय अपराध करने तथा समाज में शांति भंग करने की प्रवृत्ति के कारण की गई थी, उचित थी। इसके बाद, धारा 107/116(3) पठित 151 सीआरपीसी के तहत शिकायत उनके विरुद्ध अगले दिन यानी 23.05.2003 को एसडीएम की अदालत में प्रस्तुत की गई। ऐसी कार्रवाई, यदि अपने स्वरूप में भी देखी जाए, तो याचिकाकर्ता द्वारा पुलिस थाना मसूदा के एसएचओ के रूप में अपने विधिक कर्तव्य के निर्वहन में सदाशयता से की गई थी। वरिष्ठ अधिवक्ता ने यह भी प्रस्तुत किया कि प्रथमतः, शिकायतकर्ता के साथ गाली-गलौच और मारपीट का आरोप पूर्णतः असत्य और पश्चातवर्ती विचार है, जैसे की याचिकाकर्ता के विरुद्ध अभियोजन नहीं चलाया जा सकता और ऐसे अपराधों के लिए, राज्य सरकार की पूर्व स्वीकृति प्राप्त किए बिना, संज्ञान नहीं लिया जा सकता, जो कि एक लोक सेवक के खिलाफ अभियोजन के लिए धारा 197 सीआरपीसी के अंतर्गत विधि द्वारा आवश्यक और अनिवार्य शर्त है। वरिष्ठ अधिवक्ता ने जोरदार तर्क दिया कि यदि पुलिस द्वारा की गई ऐसी विधिक कार्रवाई के लिए किसी पुलिस अधिकारी के विरुद्ध अभियोजन की अनुमति दी जाती है, तो इससे न्याय का घोर दुरुपयोग होगा, क्योंकि पुलिस अधिकारी अपने अधिकारिक कर्तव्यों का निर्भयतापूर्वक निर्वहन नहीं कर पाएँगे और समाज के व्यापक

(30/05/2025 को 12:13:56 बजे डाउनलोड किया गया)

हित प्रभावित होंगे; बल्कि एक स्थिति यह भी उत्पन्न हो सकती है कि पुलिस अधिकारी अपराधियों के विरुद्ध वैधानिक कार्रवाई करने से भी हिचकने लगेंगे। अतः उनका तर्क यह है कि समस्त घटना आपस में एक श्रृंखला के रूप में जुड़ी हुई है और उसे टुकड़ों में विभाजित नहीं किया जा सकता, अतः स्वीकार्य तथ्यों की पृष्ठभूमि में, शिकायतकर्ता और अन्य दो व्यक्तियों की गिरफ्तारी याचिकाकर्ता द्वारा वैध और उचित कारणों से की गई थी, तो याचिकाकर्ता के विरुद्ध धारा 323 एवं 504 आईपीसी के अंतर्गत लिया गया संज्ञान प्रथम दृष्टया अवैध, विरुद्ध और धारा 197 सीआरपीसी के वैधानिक प्रावधान का स्पष्ट उल्लंघन है तथा परिणामस्वरूप, याचिकाकर्ता के विरुद्ध दायर की गई आपराधिक शिकायत को भी रद्द किया जाना चाहिए।

5. वरिष्ठ अधिवक्ता ने अपनी दलीलों को बल प्रदान करने हेतु निम्नलिखित न्यायनिर्णयों पर भरोसा किया हैः

(I) श्रीकंठैया रामय्या मुनिपल्ली बनाम राज्य बंबई एआईआर **(1955)** एससी **287;**

(II) पुखराज बनाम राजस्थान **(1973) 2** एससीसी **701;**

(III)ऋषि चंद्रा बनाम केंद्रीय जांच ब्यूरो **(1998)** सीआर.एलआर (राजस्थान**) 136;** एवं

(IV) राज्य ओडिशा बनाम गणेश चंद्र जू **(2004) 8** एससीसी **401**।

6. इसके विपरीत, विद्वान लोक अभियोजक ने विवादित आदेशों का समर्थन किया और तर्क दिया कि धारा 197 सीआरपीसी का संरक्षण सही रूप से समाप्त कर दिया गया है

(30/05/2025 को 12:13:56 बजे डाउनलोड किया गया)

और याचिकाकर्ता को दिए गए तथ्यों में ऐसे वैधानिक संरक्षण से उचित रूप से वंचित किया गया है, अतः विवादित संज्ञान आदेश में कोई हस्तक्षेप वारंटेड नहीं है और याचिकाकर्ता के खिलाफ अभियोजन चलाने हेतु वह उत्तरदायी है।

विद्वान लोक अभियोजक ने सर्वोच्च न्यायालय द्वारा 17.01.2024 को दिए गए एक हालिया निर्णय पर भरोसा किया है, जिसमें फैसला है—<u>आपराधिक अपील संख्या **256/2024:**शडाक्षरी बनाम राज्य कर्नाटक **2024** लाइवलॉ **(**एसजी**) 42**।</u>

7. शिकायतकर्ता-प्रतिवादी संख्या 2 की ओर से, इस याचिका की सुनवाई हेतु नोटिस सेवा के बावजूद, जैसा कि कार्यालय द्वारा बताया गया, कोई भी इस याचिका के विरोध में उपस्थित नहीं हुआ। अतः, विद्वान लोक अभियोजक द्वारा विवादित आदेशों को न्यायसंगत ठहराने हेतु दिए गए तर्क, शिकायतकर्ता-प्रतिवादी संख्या 2 की ओर से भी स्वीकार कर लिए गए हैं।

8. दोनों पक्षों के विद्वान परामर्शदाता को विस्तार से सुना गया और संपूर्ण रिकॉर्ड का परीक्षण किया गया।

9. प्रारंभ में, यह न्यायालय उचित और न्यायसंगत समझता है कि यह उल्लेख किया जाए कि अभिलेख से स्पष्ट है कि संज्ञान आदेश को याचिकाकर्ता द्वारा सत्र न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई थी। याचिका दायर करके आपराधिक पुनरीक्षण याचिका धारा 397(1) सीआरपीसी के अंतर्गत सत्र न्यायालय में दायर की गई थी, जिसे गुण-दोष के आधार पर खारिज कर दिया गया, अतः इस दृष्टिकोण से हाईकोर्ट द्वारा धारा 397(3)

(30/05/2025 को 12:13:56 बजे डाउनलोड किया गया)

सीआरपीसी के तहत दूसरी आपराधिक पुनरीक्षण याचिका सुनवाई हेतु स्वीकार करने पर निषेध लागू होती है। तथापि, वर्तमान याचिका याचिकाकर्ता द्वारा उच्च न्यायालय की निहित अधिभावकीय अधिकारिता धारा 482 सीआरपीसी के अंतर्गत दायर की गई है और यह विधि का अच्छी तरह से स्थापित सिद्धांत है, जैसा कि न्यायिक दृष्टांतों द्वारा बार-बार तय किया गया है कि यद्यपि धारा 397(1) सीआरपीसी के तहत उच्च न्यायालय में पुनरीक्षण निषिद्ध है (उप-धारा 3 द्वारा), फिर भी हाईकोर्ट के अधिकार धारा 482 पढ़ी धारा 483 सीआरपीसी के साथ, तथ्यों और परिस्थितियों के परीक्षण पर यदि किसी विशेष मामले में न्याय या विधि के उल्लंघन के स्पष्ट दोष या प्रक्रियागत दुरुपयोग से अपीलकर्ता पक्ष को क्षति हो रही हो, तो अपवादस्वरूप ऐसे मामलों में उच्च न्यायालय की निहित अधिकारिता का प्रयोग किया जा सकता है, भले ही धारा 397(3) सीआरपीसी के तहत निषेध क्यों न हो। अब यह कोई नया प्रश्न नहीं रह गया है कि धारा 482 सीआरपीसी के तहत उच्च न्यायालय को निम्नवर्ती अदालतों द्वारा पारित आदेशों को निरस्त करने का अधिकार है, यदि विवादित आदेश कानून के किसी वैधानिक प्रावधान के स्पष्ट उल्लंघन में पारित किया गया हो या उस आदेश में स्पष्ट त्रुटि या विधि/अधिकारिता में गंभीर दोष हो। इसी प्रकार, धारा 483 सीआरपीसी के अनुसार, उच्च न्यायालय को मजिस्ट्रेटों व अन्य सभी अदालतों पर अधीक्षण का अधिकार प्राप्त है, जिसे उपयुक्त मामलों में प्रयोग किया जा सकता है। मामले के तथ्यों के परीक्षण पर, यदि मजिस्ट्रेट द्वारा पारित कार्रवाई या आदेश पूर्ण रूप से विधिक प्रावधान के प्रतिकूल अथवा स्थापित विधिक सिद्धांत के विपरीत है, तो आदेश के साथ हस्तक्षेप आवश्यक है

(30/05/2025 को 12:13:56 बजे डाउनलोड किया गया)

ताकि न्याय का उद्दिष्ट प्राप्त किया जा सके या अन्यथा न्याय प्राप्त करने में विफलता को रोका जा सके।

ऐसा स्थापित विधिक सिद्धांत और न्यायालय के अधिकार को ध्यान में रखते हुए, और मामले के तथ्यों के परीक्षण तथा विद्वान परामर्शदाता के तर्कों को सुनने के बाद, यह याचिका गुण-दोष के आधार पर विचाराधीन है।

10. वर्तमान मामले के तथ्यों पर आते हुए, अभिलेख से स्पष्ट है कि उक्त आपराधिक शिकायत शिकायतकर्ता-प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा याचिकाकर्ता के विरुद्ध 27.05.2003 को दर्ज कराई गई थी और आरोप लगाया गया कि याचिकाकर्ता ने अपने पद और अधिकार का दुरुपयोग किया, जो कि पुलिस थाना मसूदा में एसएचओ था, और शिकायतकर्ता सहित अन्य दो व्यक्तियों - नरेंद्र सिंह और मोहन सिंह - को 22.05.2003 की रात पुलिस थाना मसूदा में बंदी बनाए रखा, और गाली-गलौच, दुर्व्यवहार तथा शिकायतकर्ता व मोहन सिंह के साथ मारपीट की। ऐसी सभी शिकायतकर्ता द्वारा आपराधिक शिकायत में लगाए गए आरोप आपस में जुड़े हुए हैं/उनका संबंध एक-दूसरे से है तथा ये सभी घटनाक्रम के एक ही अनुक्रम में घटित हुए। शिकायतकर्ता के अनुसार, याचिकाकर्ता की ऐसी सभी कथित कार्रवाइयाँ मनमानी और अवैध थीं तथा प्रतिद्वंद्विता और भंवरा पुत्र रूपा की प्रेरणा के तहत की गई थीं। अन्य दो व्यक्तियों ने कोई शिकायत नहीं की, यद्यपि उन्होंने प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा दर्ज की गई शिकायत के समर्थन में अपना बयान अवश्य दिया। यह उल्लेखनीय है कि न तो शिकायतकर्ता और न ही अन्य दो व्यक्तियों ने उस समय कोई शिकायत की थी। प्रथम दृष्टया 23.05.2003 को जब उन्हें याचिकाकर्ता द्वारा

(30/05/2025 को 12:13:56 बजे डाउनलोड किया गया)

एसडीएम की अदालत में प्रस्तुत किया गया, उस समय किसी ने भी कोई शिकायत नहीं की। इसके विपरीत, एसडीएम के समक्ष, तीनों ने अपनी गलती स्वीकार की और समाज में शांति एवं व्यवस्था बनाए रखने के लिए छह माह के लिए बंधपत्र प्रस्तुत करने हेतु आदेश का पालन करने की इच्छा व्यक्त की। यह चिंता का विषय है और ध्यान दिए जाने योग्य बात है कि यदि वास्तव में शिकायतकर्ता और मोहन सिंह के शरीर पर खरोंच, चोट, सूजन आदि की साधारण चोटें थीं, तो वे स्वयं 23.05.2003 को एसडीएम के समक्ष प्रस्तुत होते समय ही शिकायत कर सकते थे, किंतु ऐसा नहीं किया गया। केवल 24.05.2003 की बाद की चिकित्सा रिपोर्ट के आधार पर ही 27.05.2003 को शिकायतकर्ता द्वारा न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष शिकायत दर्ज कराई गई।

11. यह उल्लेखनीय है कि न्यायिक मजिस्ट्रेट के अभिलेख पर, एक स्पष्ट और सही स्थिति सामने आई कि 22.05.2003 की रात में शिकायतकर्ता-प्रतिवादी संख्या 2 और अन्य दो व्यक्तियों की गिरफ्तारी और हिरासत पुलिस थाना मसूदा में पुलिस द्वारा धारा 151 सीआरपीसी के अंतर्गत वैधानिक अधिकारों के प्रयोग में, संज्ञेय अपराध की घटित होने की संभावना को रोकने एवं समाज में शांति और व्यवस्था बनाए रखने के उद्देश्य से की गई थी। न्यायिक मजिस्ट्रेट ने स्पष्ट रूप से माना और कहा कि शिकायतकर्ता-प्रतिवादी संख्या 2 की पुलिस थाना मसूदा में हिरासत अवैध हिरासत नहीं थी। अतः जहां तक शिकायतकर्ता की अवैध हिरासत के आरोप का संबंध है, उसे गलत और अभिलेख के विपरीत पाया गया तथा न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा धारा 365 एवं 342 आईपीसी के तहत कोई संज्ञान नहीं लिया गया। हालांकि, न्यायिक मजिस्ट्रेट ने एक अनुमान लगाया कि

(30/05/2025 को 12:13:56 बजे डाउनलोड किया गया)

शिकायतकर्ता के शरीर पर पाई गई खरोंच, चोट व सूजन शिकायतकर्ता और मोहन सिंह के शरीर के हिस्सों पर आई खरोंच, चोट और सूजन, उनके द्वारा लगाए गए आरोप के अनुसार, 22.05.2003 की रात पुलिस स्टेशन में हिरासत के दौरान, याचिकाकर्ता द्वारा कथित रूप से दी गई मारपीट का परिणाम हैं। जबकि मजिस्ट्रेट ने स्वयं स्वीकार किया है कि उनकी हिरासत वैध और उचित कारणों से की गई थी, जितना कि पुलिस द्वारा जांच पूरी करने के पश्चात 23.05.2003 को एसडीएम की अदालत में उनके विरुद्ध धारा 107/116(3) पठित धारा 151 सीआरपीसी के अंतर्गत आपराधिक शिकायत दायर की गई थी।

12. इसमें कोई संदेह नहीं कि किसी अपराध का संज्ञान आरोपों की संभावना या संदेह के आधार पर लिया जा सकता है, लेकिन वर्तमान मामले में, शिकायतकर्ता द्वारा लगाए गए आरोपों की सत्यता का अनुमान नहीं लगाया जा सकता, क्योंकि शिकायतकर्ता ने न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष सही और पूर्ण तथ्य अभिलेख पर प्रस्तुत नहीं किए। केवल पुलिस द्वारा जांच के पश्चात ही संपूर्ण तथ्य सामने आए कि पुलिस द्वारा शिकायतकर्ता और अन्य दो व्यक्तियों के विरुद्ध धारा 107/116(3) पठित 151 सीआरपीसी के अंतर्गत आपराधिक शिकायत दर्ज की गई थी, जब उन्हें 23.05.2003 को एसडीएम की अदालत में प्रस्तुत किया गया था। शिकायतकर्ता ने जानबूझकर और जानते हुए इन तथ्यों को छुपाया कि उसने अपनी गलती स्वीकार की थी और पुलिस द्वारा आपराधिक शिकायत में उसके विरुद्ध आरोप लगाए गए थे। यह निर्विवादित तथ्यात्मक स्थिति पुलिस जांच के बाद ही रिकॉर्ड में आई। इसमें कोई विवाद नहीं है कि शिकायतकर्ता तथा अन्य दो

(30/05/2025 को 12:13:56 बजे डाउनलोड किया गया)

व्यक्तियों पर शांति भंग करने और संज्ञेय अपराध करने की प्रवृत्ति के आरोप लगे थे, और उन्होंने इन आरोपों का न तो प्रतिवाद किया और न ही विरोध किया। जिसके तहत उन्हें गिरफ्तार किया गया था। बल्कि इसके विपरीत, शिकायतकर्ता एवं अन्य दो व्यक्तियों ने आरोपों को स्वीकार किया और 23.05.2003 को एसडीएम की अदालत में बिना किसी आपत्ति के बंधपत्र प्रस्तुत किए। जहाँ तक ऐसी कार्यवाही एवं एसडीएम की अदालत द्वारा पारित आदेश दिनांक 23.05.2003 का संबंध है, उसकी वैधता को शिकायतकर्ता-प्रतिवादी संख्या 2 ने कभी भी किसी भी समय प्रश्नवाचक नहीं बनाया। फिर भी, शिकायतकर्ता ने अपनी आपराधिक शिकायत में इन तथ्यों का कभी खुलासा नहीं किया। शिकायतकर्ता की ऐसी प्रवृत्ति को देखते हुए और समस्त तथ्यों एवं परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, जिसमें आपराधिक शिकायत घटना के 4-5 दिन बाद, दिनांक 24.05.2003 की पोस्ट इंजरी रिपोर्ट के आधार पर दर्ज कराई गई, तथा अपनी अवैध हिरासत की झूठी कहानी प्रस्तुत करने के प्रयास के अतिरिक्त, याचिकाकर्ता को सिर्फ प्रतिशोध (बदला) लेने के लिए आपराधिक कार्रवाई में घसीटने की संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता।

13. तथ्यों की संपूर्णता पर विचार करते हुए और उन्हें समेकित रूप से लेते हुए, याचिकाकर्ता द्वारा किए गए कार्य उसके एसएचओ के रूप में अपने कर्तव्यों का निर्वहन करने के रूप में किए जाने का दावा किया गया है। न केवल अभियोगी-उत्तरदाता नं.2 की अन्य दो व्यक्तियों के साथ गिरफ्तारी की गई, बल्कि उनसे जांच भी की गई और इसके बाद उनके खिलाफ धारा 107/116(3) सहपठित 151 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत आपराधिक शिकायत दर्ज की गई। हालांकि, याचिकाकर्ता द्वारा अभियोगी के साथ

(30/05/2025 को 12:13:56 बजे डाउनलोड किया गया)

दुर्व्यवहार करने, बदसलूकी करने और मारपीट करने के आरोप विश्वास उत्पन्न नहीं करते, भले ही तर्क हेतु इन आरोपों को उनके सतही मूल्य पर भी मान लिया जाए, और अन्य आरोपों के साथ विचार किया जाए, तब भी घटनाओं की पूरी श्रृंखला में आपस में संबंध स्पष्ट होता है और याचिकाकर्ता की कार्रवाई उसके पद पर रहते हुए अपने अधिकारिक कर्तव्यों का निर्वहन करते हुए किया गया था। तर्क के लिए, यदि याचिकाकर्ता के किसी भी कार्य को गलत धारणा में अपने कर्तव्य की सीमा से अधिक माना जाए, तब भी इस स्वीकार्य तथ्य की पृष्ठभूमि में कि याचिकाकर्ता ने पुलिस स्टेशन में एसएचओ रहते हुए कार्य किए हैं, उसे उस कानूनी संरक्षण से वंचित नहीं किया जाना चाहिए जो एक लोक सेवक को उसकी आपराधिक अभियोजन के खिलाफ धारा 197 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत उपलब्ध है।

14. यह वह मामला नहीं है जिसमें अभियोगी और मोहन सिंह को बेरहमी से पीटा गया हो और उन्हें गंभीर या गहरी चोटें आई हों या मुठभेड़ में मृत्यु का कोई मामला हो। यह एक साधारण मामला है जिसमें अभियोगी द्वारा केवल सतही चोटें जैसे घर्षण और शरीर के विभिन्न हिस्सों पर चोट के निशान होने की शिकायत की गई है, जो पुलिस थाना में हिरासत के दौरान हुए। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, अभियोगी और अन्य दो व्यक्तियों को शांति भंग करने का दोषी पाया गया और वे संज्ञेय अपराध करने के लिए प्रवृत्त पाए गए, इसलिए पुलिस द्वारा उन्हें हिरासत में लिया गया और पूछताछ के बाद उनके खिलाफ धारा 107/116(3) सहपठित 151 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत शिकायत दर्ज की गई तथा अभियोगी के खिलाफ लगाए गए आरोपों को स्वीकार कर

(30/05/2025 को 12:13:56 बजे डाउनलोड किया गया)

लिया गया। चोटों की प्रकृति, जो कि सामान्य घर्षण और चोट के निशान हैं, को देखते हुए, यह जोड़ना कठिन है कि ऐसी चोटें याचिकाकर्ता द्वारा ही की गई हों, क्योंकि अभियोगी और मोहन सिंह के द्वारा ऐसी सामान्य चोटें, उनकी गिरफ्तारी से पहले दिनांक 22.05.2003 और उनकी रिहाई के बाद 23.05.2003 को हो सकती हैं, इसे भी नकारा नहीं जा सकता है। केवल दूरस्थ अनुमान के आधार पर, न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा याचिकाकर्ता के विरुद्ध धारा 323 व 504 भारतीय दंड संहिता के तहत आरोपों का संज्ञान लेना, वह भी बिना जोर दिए, त्रुटिपूर्ण था। पिछली स्वीकृति धारा 197 दंड प्रक्रिया संहिता के प्रकाश में, विशेष रूप से तब, जब स्वयं न्यायिक मजिस्ट्रेट ने स्वीकार किया कि याचिकाकर्ता द्वारा अभियोगी-प्रतिवादी नं.2 को अन्य दो व्यक्तियों के साथ गिरफ्तार करने की कार्रवाई उसके अपने अधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन में की गई थी।

15. अतः, घटनाओं की पूरी श्रृंखला को समग्र और व्यापक दृष्टिकोण से देखते हुए, यह न्यायालय पाता है कि पुलिस (जिसमें याचिकाकर्ता भी शामिल है) की कार्रवाई, संपूर्णता में, वही है जो "अपने अधिकारिक कर्तव्य का पालन करते हुए या पालन किए जाने का दावा करते हुए" की श्रेणी में आती है, और इसलिए, याचिकाकर्ता को धारा 197 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत आपराधिक अभियोजन के विरुद्ध विधिक संरक्षण पाने का अधिकार होना चाहिए।

16. धारा 197 दंड प्रक्रिया संहिता की परिधि, क्षेत्र और प्रभाव, और किन परिस्थितियों में यह प्रावधान किसी लोक सेवक को उसके आपराधिक अभियोजन के विरुद्ध सुरक्षा प्रदान करता है, यह लंबे समय से चर्चा का विषय रहा है और इस पर विशाल न्यायिक

(30/05/2025 को 12:13:56 बजे डाउनलोड किया गया)

निर्णय उपलब्ध हैं। इस संदर्भ में कुछ निर्णयों का सार प्रस्तुत करना उपयुक्त होगा, ताकि न्यायिक दृष्टांतों का निचोड़ सामने आ सके।

17. इस उच्च न्यायालय की समवर्ती पीठ ने हरिश चंद्र (उपर्युक्त) मामले में याचिकाकर्ताओं को, जो एस.पी. और अतिरिक्त एस.पी. के पद पर कार्यरत थे, एवं जिनके विरुद्ध न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा उनके अधिकारिक कर्तव्यों के निर्वहन, अर्थात् अपराध की पूछताछ के दौरान की गई कार्रवाइयों के लिए संज्ञान लिया गया था, के संदर्भ में, धारा 197 दंड प्रक्रिया संहिता की सुरक्षा प्रदान की। ऐसा तब किया गया, जब अंतिम प्रतिवेदन नकारात्मक था और अभियोजन के लिए कोई स्वीकृति प्राप्त नहीं थी। समवर्ती पीठ ने अनेक निर्णयों पर विस्तृत चर्चा के उपरांत, परंतु, पैरा सं. 10 से 13 में निम्नलिखित रूप में टिप्पणी की:

> "10. पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं द्वारा उल्लिखित मामलों के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि 'अपने अधिकारिक कर्तव्य का पालन करते हुए या पालन करने का दावा करते हुए' जैसे शब्द, जो धारा 197(1) दंड प्रक्रिया संहिता की भाषा में आते हैं, बार-बार न्यायालयों का ध्यान आकर्षित करते रहे हैं। बहुत पहले हरी राम सिंह बनाम फेडरल कोर्ट एआईआर 1939 एफसी 43 के मामले में, सुलैमान जे. ने यह कहा था कि—
>
> > 'यह धारा केवल उन्हीं कार्यों तक सीमित नहीं की जा सकती है जो किसी लोक सेवक द्वारा प्रत्यक्ष रूप से अपने अधिकारिक पद पर रहते हुए अपने कर्तव्य के निर्वहन में किए गए हैं, भले ही कर्तव्य की उपलब्धता के भ्रम में अपनी सीमा से अधिक किया गया हो। यह भी आवश्यक नहीं है कि यह कहा जाए कि अपराध का गठन करने वाला कार्य इतनी गहराई से अधिकारिक कर्तव्य से जुड़ा हो कि वह उसी लेन-देन का हिस्सा बन जाए।'

(30/05/2025 को 12:13:56 बजे डाउनलोड किया गया)

इसी मामले में वरदाचारियर जे. ने भी यह टिप्पणी की—

> 'शिकायत किए गए कार्य की प्रकृति में कुछ ऐसा अवश्य होना चाहिए जो उसे करने वाले व्यक्ति के अधिकारिक चरित्र से जोड़ता हो।'

11. फेडरल कोर्ट के विद्वान न्यायाधीशों द्वारा व्यक्त विचारों की पुष्टि प्रिवी काउंसिल की न्यायिक समिति ने गिल बनाम राज्य एआईआर 1948 पीसी 128 के मामले में निम्नलिखित शब्दों में की—

> कोई लोक सेवक तभी यह कहा जा सकता है कि वह अपने अधिकारिक कर्तव्य का निर्वहन करते हुए कार्य कर रहा है या उसका पालन करने का दावा कर रहा है, यदि उसका कार्य उसके अधिकारिक कर्तव्य के दायरे में आता हो <u>इस परीक्षण का अर्थ यह भी हो सकता है कि क्या लोक सेवक, यदि उस पर सवाल किया जाए, तो यह तर्कसंगत रूप से दावा कर सकता है कि वह जो कर रहा है, वह अपने पद के अधिकार के तहत कर रहा है।"</u>

12. गिल मामले में प्रिवी काउंसिल के लॉर्डशिप्स द्वारा व्यक्त विचारों की शुद्धता की सुप्रीम कोर्ट के उनके लॉर्डशिप्स द्वारा मामले "माताजोग दुबे बनाम एच.सी. भारी, एआईआर 1956 एससी 44" में पुनः समीक्षा की गई और उनके लॉर्डशिप्स ने माना कि निर्धारित किए गए परीक्षण में यह स्थापित होना चाहिए कि जिस कार्य की शिकायत की गई है, वह एक अधिकारिक कार्य था, न कि धारा 197 द्वारा लोक सेवक को दिए गए संरक्षण के क्षेत्र को अनावश्यक रूप से संकीर्ण करने वाला। पूर्व के निर्णयों की समीक्षा के बाद लॉर्डशिप्स ने यह देखा—

> "कार्य और अधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन के बीच एक उचित संबंध होना चाहिए; उक्त कार्य का कर्तव्य से कारणात्मक संबंध होना चाहिए, ताकि आरोपी यह एक उचित, न कि बनावटी या काल्पनिक दावा रख सके कि उसने उक्त कार्य अपने कर्तव्य का निर्वहन करते हुए किया।"

(30/05/2025 को 12:13:56 बजे डाउनलोड किया गया)

13. उपरोक्त परीक्षण को पुख राज बनाम राज्य राजस्थान (1973) 2 एससीसी 701 के मामले में लागू करते हुए, शिकायतकर्ता को लात मारने और उसका अपमान करने की कार्यवाही को लोक सेवक द्वारा उसके कर्तव्य के निर्वहन की प्रक्रिया में किया गया कार्य माना गया। लेकिन मामले एस.पी. वेन्थियानाथन बनाम शानमुगनाथन जेटी 1994 (2) एससी 689, जिसमें जिला पुलिस अधिनियम, 1869 की धारा 53 द्वारा प्रदान सुरक्षा के दायरे से संबंधित था, में सर्वोच्च न्यायालय ने यह देखा कि "केवल इस कारण कि अपीलकर्ता को कानून के तहत समन जारी कर बुलाया गया था, समन की अनुपालन में उपस्थित होने पर अपीलकर्ता के साथ मारपीट करने और प्रताड़ित करने की कार्रवाई समन जारी करने के अधिकारिक कृत्य और प्रतिवादियों की कार्रवाई के बीच कोई संबंध स्थापित नहीं करता है। जब तक कानून के प्रावधानों के अंतर्गत किसी कार्रवाई या आचरण और जिस आपराधिक कृत्य की शिकायत की गई है, उसके बीच कोई संबंध स्थापित नहीं होता, तब तक धारा 53 के प्रावधान आकर्षित नहीं होंगे।"इसलिए, बख्शीश सिंह के मामले में यह प्रमुख रूप से कहा गया कि:

> "अपने कर्तव्यों के निर्वहन में लोक सेवकों की सुरक्षा करना आवश्यक है। उन्हें आपराधिक कार्यवाहियों और अभियोजनों में परेशान किए जाने से मुक्त किया जाना चाहिए, यही धारा 196 और धारा 197 दंड प्रक्रिया संहिता का उद्देश्य है। लेकिन यह भी समान रूप से महत्वपूर्ण है कि नागरिकों के अधिकारों की भी रक्षा की जाए और कोई अतिरेक की अनुमति न दी जाए। 'मुठभेड़ में मौतें' बहुत आम हो गई हैं। प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में सरकारी अधिकारियों तथा लोक सेवकों को उनके अधिकारिक कर्तव्यों के निर्वहन में तथा निजी नागरिकों के संरक्षण को संतुलित करना आवश्यक है, यह जानने के लिए कि किस हद तक और कितनी दूर तक कोई लोक सेवक अपने कर्तव्यों के निर्वहन या अपने कर्तव्यों के निर्वहन के दावे में कार्य कर रहा है और क्या लोक सेवक ने अपनी सीमा का अतिक्रमण किया है..."

(30/05/2025 को 12:13:56 बजे डाउनलोड किया गया)

(जोर दिया गया)

समवर्ती पीठ ने अंततः यह माना कि इसमें कोई विवाद नहीं है कि दोनों याचिकाकर्ता संबंधित समय पर एसपी और एएसपी की अपनी क्षमताओं में कार्यरत थे। यह प्रथम दृष्टया स्पष्ट है कि याचिकाकर्ताओं का कार्य उनके अधिकारिक कर्तव्यों के निर्वहन से काफी तर्कसंगत रूप से संबंधित था। अपराध में कथित संलिप्तता के संबंध में रमेश्वर लाल से पूछताछ करना उनके अधिकारिक कर्तव्यों का हिस्सा था। अतः उनका कार्य उनके द्वारा अधिकारिक कर्तव्यों के निर्वहन से असंबद्ध नहीं था। तथ्यों की ऐसी पृष्ठभूमि में धारा 197 दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत संरक्षण विस्तारित किया गया। संज्ञान आदेश के साथ-साथ धारा 197 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत स्वीकृति प्राप्त किए बिना याचिकाकर्ताओं के अभियोजन को निरस्त कर दिया गया।

18. <u>गणेश चंद्र जेठ</u> (उपर्युक्त) मामले में उच्चतम न्यायालय ने, जब धारा 197 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत लोक सेवक को प्रदान की गई सुरक्षा के विषय पर विचार किया, तो यह पाया कि "अधिकारिक कर्तव्य" शब्द का प्रयोग यह संकेत देता है कि कार्य या चूक लोक सेवक द्वारा अपनी सेवा के दौरान किया गया होना चाहिए और यह उसके कर्तव्य के निर्वहन में होना चाहिए। सुरक्षा का विस्तार वहाँ तक किया गया जहाँ लोक सेवक द्वारा अपने अधिकारिक कर्तव्य के अनुमानित पालन में किसी कार्य या चूक की गई हो। यह माना गया कि एक बार कोई कार्य या चूक लोक सेवक द्वारा अपने कर्तव्य के निर्वहन में की गई पाई जाती है, तो उसकी अधिकारिक प्रकृति के संदर्भ में उदार एवं

(30/05/2025 को 12:13:56 बजे डाउनलोड किया गया)

व्यापक व्याख्या दी जानी चाहिए। तत्पर संदर्भ के लिए, निर्णय के पैराग्राफ संख्या 11 और 12 में दर्ज निष्कर्षों के अंश नीचे दिए जा रहे हैं:

> "11. इसका दायरा और बढ़ गया है, क्योंकि अब संरक्षण उन कार्यों या चूकों तक विस्तारित कर दिया गया है, जो अधिकारिक कर्तव्य के अनुमानित पालन में किये गए हैं। यह कार्यालय के रंग में किया गया कार्य माना जाता है। अतः अधिकारिक कर्तव्य का तात्पर्य यह है कि कार्य या चूक लोक सेवक द्वारा अपनी सेवा के दौरान की गई होनी चाहिए और वह कार्य या चूक उसके कर्तव्य के निर्वहन का हिस्सा होना चाहिए, जो और भी अधिकारिक प्रकृति का होना चाहिए। इस धारा की व्याख्या सावधानीपूर्वक की जानी चाहिए, जब सेवा के दौरान किसी कार्य या चूक की प्रक्रिया निर्धारित की जा रही हो। इसका प्रवर्तन उन्हीं कर्तव्यों तक सीमित होना चाहिए, जिनका निर्वहन ड्यूटी के कोर्स में हुआ हो। लेकिन एक बार यह स्थापित हो जाता है कि कोई कार्य या चूक लोक सेवक द्वारा अपने कर्तव्य के निर्वहन में की गई है, तो उसकी अधिकारिक प्रकृति के संदर्भ में उदार और व्यापक व्याख्या दी जानी चाहिए। उदाहरण के लिए, कोई लोक सेवक आपराधिक गतिविधियों में लिप्त होने का अधिकारी नहीं है। इस हद तक उक्त धारा की व्याख्या संकीर्ण और सीमित तरीके से करनी चाहिए। लेकिन एक बार यह स्थापित हो जाए कि कार्य या चूक लोक सेवक द्वारा अपने कर्तव्य के निर्वहन के दौरान की गई है, तो उसके अधिकारिक होने के दायरे की व्याख्या लोक सेवक के पक्ष में धारा के उद्देश्य को आगे बढ़ाने के लिए की जानी चाहिए।"
>
> संविधान के बिना किसी लोक सेवक को संरक्षण प्रदान करने का पूरा उद्देश्य ही निष्फल रह जाएगा। उदाहरण के लिए, कोई पुलिस अधिकारी अपने कर्तव्य के निर्वहन में बल प्रयोग कर सकता है, जो अभियोजन योग्य अपराध हो सकता है, जिसके लिए स्वीकृति आवश्यक हो सकती है। लेकिन यदि वही अधिकारी सेवा के दौरान, किंतु अपने कर्तव्य के निर्वहन में नहीं, और उसके लिए कोई औचित्य न हो, तो उस पर धारा 197 की रोक लागू नहीं होगी। किसी लोक सेवक द्वारा अपने कर्तव्य के निर्वहन में किए गए कार्य या चूक को अधिकारिक माने जाने की सीमा

(30/05/2025 को 12:13:56 बजे डाउनलोड किया गया)

को इस न्यायालय ने "माताजोग दुबे बनाम एच.सी. बिहारी" के मामले में इस प्रकार समझाया:

> "जिस अपराध को आरोपित किया गया है (आरोपी पर), उसका कुछ लेना-देना होना चाहिए, या किसी प्रकार अधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन से संबंधित होना चाहिए... कार्य और अधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन के बीच एक उचित संबंध होना चाहिए; उस कर्तव्य से ऐसा संबंध होना चाहिए कि आरोपी उस कर्तव्य के निर्वहन में उसे करने का एक उचित दावा प्रस्तुत कर सके, न कि कोई बनावटी या काल्पनिक दावा, कि उसने वह अपने कर्तव्य के निर्वहन के दौरान किया।"
>
> 12. यदि तथ्यों से, प्रथम दृष्टया यह पाया जाए कि जिस कार्य या चूक के लिए आरोपी पर आरोप लगाया गया है, उसका उसके कर्तव्य के निर्वहन से उचित संबंध है, तो उसे अधिकारिक ही माना जाएगा, जिस पर धारा 197 लागू होने की अस्वीकार्यता नहीं रह जाती।

19. इस बिंदु पर कि किस स्तर पर, धारा 197 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत स्वीकृति की आवश्यकता का मुद्दा उत्पन्न हो सकता है, सर्वोच्च न्यायालय ने <u>ओम प्रकाश बनाम राज्य झारखंड **(2012) 12** एससीसी **721**</u> के मामले में यह देखा और माना कि यह मुद्दा प्रारंभिक चरण पर भी उत्पन्न हो सकता है। यह देखा गया कि रिकॉर्ड पर ऐसे निर्विवाद और अपराजेय परिस्थितियां हो सकती हैं, जो शुरू में ही यह स्थापित कर सकती हैं कि पुलिस अधिकारी या लोक सेवक अपने अधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन में कार्य कर रहा था और धारा 197 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत संरक्षण पाने का अधिकारी है। यह भी देखा गया कि जब तक कोई अपराजेय साक्ष्य रिकॉर्ड पर नहीं आता, जिससे सिद्ध हो कि पुलिस की कार्रवाई अवैध, दुर्भावनापूर्ण और प्रतिशोधवश की गई थी, तब तक पुलिस

(30/05/2025 को 12:13:56 बजे डाउनलोड किया गया)

अभियोजन के अधीन नहीं किया जा सकता और अभियोजन के लिए स्वीकृति उनकी अभियोजन की पूर्वशर्त होनी चाहिए।

20. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने हाल ही में डी. देवराज बनाम ओवैस साबिर हुसैन **(2020) 7** एससीसी **694** के मामले में, धारा 197 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत अभियोजन के लिए स्वीकृति के उद्देश्य पर विस्तार से चर्चा की तथा इसे तय करने के लिए परीक्षण भी विस्तार से प्रस्तुत किया। कर्नाटक पुलिस अधिनियम, 1963 की धारा 170 के प्रावधान को भी राज्य में लागू होने के नाते विचार में लिया गया। सर्वोच्च न्यायालय ने यह माना कि अभियोजन के लिए स्वीकृति का उद्देश्य, चाहे वह धारा 197 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत हो या कर्नाटक पुलिस अधिनियम, 1963 की धारा 170 के तहत, किसी लोक सेवक/पुलिस अधिकारी को उसके अधिकारिक कर्तव्यों और कार्यों के निर्वहन में तंग करने हेतु उत्पन्न की गई निरर्थक प्रतिशोधात्मक आपराधिक कार्यवाहियों से सुरक्षा प्रदान करना है। तत्पर संदर्भ हेतु, निर्णय के प्रासंगिक भाग, अर्थात् अनुच्छेद 65 से 71, नीचे प्रस्तुत किए जा रहे हैं:

> "65. किसी पुलिस अधिकारी द्वारा किए गए किसी अपराध के संज्ञान लेने अथवा उस पर विचार करने के लिए धारा 197 दंड प्रक्रिया संहिता को कर्नाटक पुलिस अधिनियम, 1963 की धारा 170 के साथ पढ़ते हुए स्वीकृति की आवश्यकता संबंधी कानून इस न्यायालय द्वारा, उपरोक्त निर्णयों में, भली-भांति स्थापित किया गया है।
>
> 66. अधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन से संबंधित किसी भी कृत्य के लिए पुलिस अधिकारी के अभियोजन हेतु सरकार की स्वीकृति अनिवार्य है, ताकि पुलिस अधिकारी को प्रताड़ित करने वाली, प्रतिशोधात्मक, दुर्भावनापूर्ण एवं निरर्थक

(30/05/2025 को 12:13:56 बजे डाउनलोड किया गया)

कार्यवाहियों से उसकी रक्षा हो सके। अभियोजन के लिए सरकार की स्वीकृति की आवश्यकता, एक ईमानदार पुलिस अधिकारी को यह विश्वास देगी कि वह बिना किसी प्रतिशोधात्मक आपराधिक कार्रवाई की आशंका के, अपने अधिकारिक कर्तव्यों का दक्षतापूर्वक निर्वहन कर सकेगा, जिसके लिए उसे धारा 197 दंड प्रक्रिया संहिता, सहपठित धारा 170 कर्नाटक पुलिस अधिनियम द्वारा सुरक्षा प्राप्त है। वहीं, यदि पुलिस कर्मी ने कोई ऐसी गलती की है, जो आपराधिक अपराध की श्रेणी में आती है और उसके अभियोजन के लिए जिम्मेदार बनती है, तो उसे उपयुक्त सरकार की स्वीकृति के साथ अभियोजित किया जा सकता है।

67. प्रत्येक अपराध, जो किसी पुलिस अधिकारी द्वारा किया गया हो, वह दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 197, सहपठित कर्नाटक पुलिस अधिनियम की धारा 170 के तहत संरक्षण की आवश्यकता को आकर्षित नहीं करता। धारा 197 दंड प्रक्रिया संहिता, सहपठित कर्नाटक पुलिस अधिनियम की धारा 170 के तहत दिया गया संरक्षण

71. यदि किसी शिकायत में पुलिसकर्मी के विरुद्ध आरोपित कार्य अधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन से तर्कसंगत रूप से जुड़ा हुआ है, तो उचित सरकार की आवश्यक स्वीकृति प्राप्त किए बिना दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 197 और/या कर्नाटक पुलिस अधिनियम की धारा 170 के अंतर्गत उसका संज्ञान नहीं लिया जा सकता।"

21. शादाक्षरी (उपर्युक्त) के मामले में, जिसे माननीय लोक अभियोजक द्वारा उद्धृत किया गया, उच्चतम न्यायालय ने भी कानून के उसी व्याख्यान पर भरोसा किया, जैसा डी. देवराज (उपर्युक्त) के मामले में किया गया, परंतु धारा 197 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत सुरक्षा इस कारण अस्वीकार कर दी गई, क्योंकि वह एक ऐसा मामला था जिसमें लोक सेवक (उसमें प्रतिवादी संख्या 2) को अपनी अधिकारिक क्षमता का दुरुपयोग कर अधिकारिक दस्तावेजों के झूठे निर्माण में संलिप्त पाया गया था, इसलिए, ऐसी विशिष्ट परिस्थितियों में धारा 197 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत सुरक्षा अस्वीकार कर दी गई।

(30/05/2025 को 12:13:56 बजे डाउनलोड किया गया)

22. इस न्यायालय की राय में, वर्तमान मामले में याचिकाकर्ता के विरुद्ध लगाए गए आरोपों और तथ्यों की सम्पूर्णता को देखते हुए, उच्चतम न्यायालय द्वारा शादाक्षरी (उपर्युक्त) के मामले में अपनाई गई उपमा वर्तमान मामले पर लागू नहीं होती; बल्कि यह मामला उच्चतम न्यायालय द्वारा डी. देवराज (उपर्युक्त) के मामले में प्रस्तुत विधि के अनुपात द्वारा आच्छादित है।

23. उपर्युक्त रूप में उल्लिखित विधि के प्रस्तावों से अवगत होकर, और वर्तमान मामले की उसी कसौटी पर परीक्षा करते हुए, साथ ही उन निर्विवाद तथ्यों को ध्यान में रखते हुए कि अभियोगी-उत्तरदाता संख्या 2 की गिरफ्तारी और हिरासत याचिकाकर्ता द्वारा एसएचओ के रूप में अपने अधिकारिक कर्तव्यों के निर्वहन में की गई थी, और जांच पूरी करने के बाद उसके विरुद्ध धारा 107/116(3) सहपठित 151 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत आपराधिक शिकायत अगली ही दिन एसडीएम न्यायालय में दायर की गई, जिस पर उसने अपनी दोष स्वीकार की और शांति एवं सौहार्द बनाए रखने के लिए जमानती बंध-पत्र प्रस्तुत किया, क्योंकि पुलिस थाने में याचिकाकर्ता द्वारा उसके साथ किसी प्रकार की मारपीट या अत्याचार की कोई शिकायत पहले दिन दर्ज नहीं कराई गई थी, बल्कि चार दिन बाद उसकी रिहाई के उपरांत 27.05.2003 को वर्तमान शिकायत दायर करने के रूप में आरोप लगाए गए। इस न्यायालय का मानना है कि पूरी घटना और कार्यवाही आपस में संबंध और जुड़ाव रखती है और याचिकाकर्ता द्वारा अपने अधिकारिक कर्तव्यों के निर्वहन में की गई थी। अतः धारा 197 दंड प्रक्रिया संहिता के अधीन याचिकाकर्ता के विरुद्ध स्वीकृति की अनिवार्य आवश्यकता को हटाना न्याय की विफलता का कारण बनेगा। संख्या 2 तथा अन्य दो व्यक्तियों ने कभी उनके विरुद्ध धारा 107/116(3)

(30/05/2025 को 12:13:56 बजे डाउनलोड किया गया)

सहपठित 151 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत प्रारंभ की गई एवं संपन्न कार्यवाही पर प्रश्न नहीं उठाया और वे एसडीएम के आदेश का पालन करते हैं। ऐसे तथ्य और परिस्थितियों में, धारा 323 और 504 भारतीय दंड संहिता के अधीन याचिकाकर्ता के विरुद्ध स्वीकृति की अनिवार्यता की अनदेखी करते हुए संज्ञान लेना, जो कि धारा 197 दंड प्रक्रिया संहिता के प्रकाश में सांविधिक रूप से आवश्यक है, स्वीकार्य नहीं हो सकता तथा बिना स्वीकृति के याचिकाकर्ता का अभियोजन अनुमन्य नहीं हो सकता। डी. देवराज (उपर्युक्त) के मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह पहलू स्पष्ट किया है कि धारा 197 दंड प्रक्रिया संहिता के अधीन स्वीकृति का मुद्दा आपराधिक कार्यवाही को समाप्त करने हेतु धारा 482 दंड प्रक्रिया संहिता में उठाया जा सकता है, जो अभियोजन की कमी के कारण प्रथम दृष्टया गलत मानी जाएगी। निर्विवाद रूप से, वर्तमान मामले में स्वीकृति प्रदान नहीं की गई है।

24. उपर्युक्त चर्चाओं के आलोक में, यह न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि याचिकाकर्ता का अभियोजन धारा 197 दंड प्रक्रिया संहिता के अधीन स्वीकृति के अभाव में आगे नहीं बढ़ाया जा सकता और अतः आरोप आदेश तथा पुनरीक्षण न्यायालय का आदेश निरस्त किए जाने योग्य हैं। इस न्यायालय को वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में धारा 482 दंड प्रक्रिया संहिता के अधीन अपनी अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग करने के लिए पर्याप्त व संतोषजनक आधार मिलते हैं ताकि कानून प्रक्रिया का दुरुपयोग रोका जा सके।

25. परिणामस्वरूप, वर्तमान आपराधिक अर्जी स्वीकार की जाती है और विवादित संज्ञान आदेश दिनांक 30.01.2009 एवं पुनरीक्षण न्यायालय का आदेश दिनांक 31.05.2011 निरस्त किए जाते हैं, क्योंकि याचिकाकर्ता के विरुद्ध धारा 197 दंड प्रक्रिया

(30/05/2025 को 12:13:56 बजे डाउनलोड किया गया)

संहिता के तहत स्वीकृति के अभाव के कारण तथा इसी वजह से याचिकाकर्ता के विरुद् आपराधिक शिकायत संख्या 7/2009 निरस्त की जाती है। तथापि, यह स्पष्ट किया जाता है कि यदि धारा 197 दंड प्रक्रिया संहिता के प्रावधान अनुसार अभियोजन के लिए याचिकाकर्ता को स्वीकृति 90 दिन की अवधि में प्रदान कर दी जाती है, तो वर्तमान आपराधिक शिकायत संज्ञान आदेश के साथ पुनः जीवित हो जाएगी।

26. सभी लंबित आवेदन (यदि कोई हों), निपटाए जाते हैं।

27. अधीनस्थ न्यायालयों का रिकॉर्ड वापस भेजा जाए और इस निर्णय की प्रति परीक्षण न्यायालय को अनुपालन हेतु भेजी जाए।

(सुदेश बंसल), जे

सचिन

"अस्वीकरण- इस निर्णय का अनुवाद स्थानीय भाषा में किया जा रहा है, एवं इसका प्रयोग केवल पक्षकार इसको समझने के लिए उनकी भाशा में कर सकेगे एवं यह किसी अन्य प्रयोजन में काम नहीं ली जायेगी। सभी अधिकारिक एवं व्यवहारिक उद्देश्यों के लिए उक्त निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही विश्वसनीय माना जायेगा एवं निश्पादन एवं क्रियान्वयन में भी उसी को उपयोग में लिया जायेगा।"

Tarun Mehra
Advocate

(30/05/2025 को 12:13:56 बजे डाउनलोड किया गया)